

एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी जो बर्फीली ठण्ड में ठिठुरकर मरे नहीं

मक्सिम गोर्की



एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी जो बर्फीली ठण्ड में ठिठुरकर मरे नहीं

मक्सिम गोर्की

आवरण एवं रेखांकन : रामबाबू



अनुराग ट्रस्ट

मूल्य : 20 रुपये

पहला भारतीय संस्करण : 2005

पुनर्मुद्रण : जनवरी, 2010

प्रकाशक

अनुराग ट्रस्ट

डो - 68, निरालानगर

लखनऊ - 226020

लेजर टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी जो बर्फीली ठण्ड में ठिठुरकर मरे नहीं

बड़े दिन की एक कहानी

यह एक आम रिवाज हो गया है कि साल में एक बार बड़े दिन की कहानियों में कुछ एक छोटे लड़कों और लड़कियों को बर्फ-पाले में जामकर मार दिया जाता है। बड़े दिन की प्रतिष्ठित कहानी का बिचारा गरीब छोटा लड़का या बेचारी गरीब छोटी लड़की आम तौर से किसी प्रासाद की खिड़की के रास्ते शानदार दीवान-खाने में जगमग करते बड़े दिन के पेड़ को मुग्ध भाव से खड़ी देखती रहती है और इसके बाद बर्फ-पाले में जाम होकर मर जाती है, कडुवाहट और घोर निराशा में डूबी।



इन लेखकों के भले इरादों की मैं कद्र करता हूँ, बावजूद उस निर्ममता के, जिससे कि वे अपने नन्हें हीरों और हीरोइनों का टिकट कटाते हैं। मैं जानता हूँ कि ये लेखक इन ग़रीब छोटे बच्चों को इसलिए जाम करते हैं कि छोटे धनी बच्चों को उनके अस्तित्व की याद दिलाई जा सके, लेकिन जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, इतने शुभ लक्ष्य तक के लिए किसी छोटे ग़रीब लड़के या छोटी ग़रीब लड़की को जाम करके मारना मेरे बूते से बाहर है। मैं खुद बर्फ़-पाले में जाम होकर कभी नहीं मरा और मैंने किसी छोटे ग़रीब लड़के या छोटी ग़रीब लड़की को कभी जाम होकर मरते नहीं देखा। इसलिए मुझे डर है कि जाम होकर मरने की वेदना का चित्रण करने का मेरा प्रयत्न—अगर मैंने ऐसा किया तो—कहीं हास्यास्पद बनकर न रह जाए। इसके अलावा यह कुछ बहुत ही अटपटा भी मालूम होता है कि एक जीवित प्राणी को केवल इसलिए मार दिया जाए कि एक दूसरे जीवित प्राणी को उसके अस्तित्व की याद दिलाई जा सके।

और यही कारण है कि जो मुझे एक ऐसे छोटे लड़के और एक ऐसी छोटी लड़की की कहानी कहना ज़्यादा पसन्द है जो बर्फ़-पाले में जाम होकर नहीं मरे।

बड़े दिन से ठीक पहली साँझ थी। छः बजे थे। हवा चल रही थी, बर्फ़ के बादल उड़ाती। ये ठण्डे पारदर्शक बादल, झिलमिल चूरे की भाँति हल्के और कमनीय, चारों तरफ उड़ते फिर रहे थे। वे राह-चलतों के चेहरों से टकराते, गालों में सुइयाँ सी चुभाते और घोड़ों के अयालों पर बरफ छिड़क जाते। घोड़े अपने सिरों को झटकते, जोरों से हिनहिनाते और जोर से अपने नथुनों से भाप के बादल छोड़ते। बिजली के तारों पर बर्फ़ ऐसे पड़ा था कि वे सफ़ेद रेशमी रस्सी की भाँति मालूम होते। आसमान एकदम साफ और सितारों से अटा था। वे इतनी तेज़ी से चमक रहे थे कि ऐसा लगता था कि किसी ने, बड़े दिन के उपलक्ष्य में, उन्हें पालिश से रगड़कर चमका दिया हो, हालाँकि यह एक असम्भव सी बात थी।

सड़क पर लोगों की भारी चहल-पहल और शोर गुल बढ़ रहा था। बीच घोड़े थिरक रहे थे और लोग फुटपाथों पर चल रहे थे—कुछ उतावली में और कुछ फुरसत के साथ धीरे-धीरे। कुछ उतावली में इसलिए थे कि उन्हें चिन्ताओं और

जिम्मेदारियों का अहसास था और उनके पास गर्म कोट नहीं थे, और फुरसत में इसलिए थे कि वे इन जिम्मेदारियों के बोझ से मुक्त थे और उनके पास गर्म यहां तक कि बालदार भी—कोट थे।

इन्हीं लोगों में से एक—जो चिन्ताओं से मुक्त था और सुन्दर कालर का कोट पहने था, सो भी ऐसा, जिसमें पैबन्द लगा था,—बहुत ही कायदे के साथ पटरी पर चल रहा था। उस सज्जन के ठीक पैरों के नीचे चिथड़ों और गूदड़ में लिपटी दो छोटी-छोटी गेंदें—सी लुढ़कती दिखाई दीं और साथ ही साथ दो नन्हीं आवाजें सुनाई दीं—

“दया के सागर...” एक छोटी लड़की ने सुर छेंड़ा।

“राजाओं के राजा...” एक छोटे लड़के का स्वर भी उसके साथ आ मिला।

“एक टुकड़ा रोटी के लिए दान करो,—कुछ तो दो, मालिक!”

“एक कोपेक रोटी के लिए। त्योहार के दिन के लिए!”

इस तरह दोनों ने अपनी प्रार्थना सम्पन्न की।

ये बच्चे ही इस कहानी के हीरो और हीरोइन थे—छोटे गरीब बच्चे। लड़के का नाम था



मिशका प्रिश्च और लड़की का कात्का रियाबाया।

उस महाशय ने रुकने की ज़हमत नहीं उठाई, इसलिए बच्चे बार-बार उनके पैरों के नीचे डुबकियाँ लगाते और उसके सामने आकर खड़े हो जाते। कात्का अत्यधिक आशा से दम साधे फुसफुसाकर कहती—“सिर्फ एक टुकड़ा,” और मिशका इस सज्जन की राह रोकने की कोशिश बाकी नहीं छोड़ता।

वह व्यक्ति जब इस सबसे ऊब उठा तो उसने अपने फरदार कोट का बटन खोलकर अपना बटुवा बाहर निकाला, नाक के पास बटुवे को फड़काते हुए एक सिक्का उसमें से बाहर निकाला फिर उस सिक्के को अपनी तरफ फैले नन्हें-नन्हें तथा अत्यन्त गन्दे हाथों में से एक में—डाल दिया।

चिथड़ों की वे दोनों गेंदें, पल भर में, इस सज्जन के रास्ते से हटकर एक फाटक पर जा रुकीं जहाँ वे कुछ देर तक एक दूसरे से चिपकी खड़ी रहीं और चुपचाप सड़क पर ऊपर-नीचे नज़र दौड़ाती रहीं।

“बूढ़ा शैतान, हमारी ओर कम्बख़्त ने देखा तक नहीं,” छोटा ग़रीब लड़का कुत्सा से भरे विजयी अन्दाज़ में फुसफुसा उठा।

“वह मोड़ के उधर, गाड़ीवानों के यहाँ, गया है,” लड़की ने बताया—“लेकिन मूज़ी ने दिया क्या?”

“दस कोपेक,” मिशका ने लापरवाही से कहा।

“तो अब कुल कितने हो गए?”

“सतहत्तर कोपेक।”

“ओह, इतना? तब तो आज जल्दी ही घर लौट चलेंगे,—क्यों, ठीक है न? बड़ी ठण्ड है।”

“ऐसी क्या जल्दी है,” मिशका ने उत्साह पर ठण्डा पानी डालते हुए कहा—“और देखो, अधिक खुलकर काम न करना। अगर किसी दिन दारोगा ने पकड़ लिया तो सारे बाल कटवाकर तुझे कबूतरी बना देगा। अरे देखो, वह बजरा चला आ रहा है। चलो, चलें।”

यह बजरा एक मोटी स्त्री थी जो फर का कोट पहने थी। इससे पता चलता है

कि मिशका एक बहुत ही शैतान लड़का था, बहुत ही गँवार और अपने से बड़ों की इज्जत न करनेवाला।

“दया की देवी...” वह मिनमिनाया।

“माँ मरियम के नाम पर...” कात्का ने साथ दिया।

“छिः! कम्बख्त तीन कोपेक से ज़्यादा नहीं उगल सकी, बूढ़ी चुड़ैल!” मिशका ने उसे कोसा और फिर लपककर फाटक पर पहुँच गया।

हिम के बादल अब भी सड़क पर सपाटा लगा रहे थे और हवा अधिकाधिक तेज़ होती जा रही थी। टेलीग्राफ़ के तार भनभना रहे थे। हिम-गाड़ियों के रनर्स के नीचे बर्फ़ चरचरा रही थी। और सड़क के उस ओर, कहीं दूर से, किसी स्त्री के खिलखिलाने की गूँजदार आवाज़ आ रही थी।

“क्यों चची अनफ़िसा आज रात को फिर नशे में धुत्त नज़र आएगी न?” कात्का ने पूछा और अपने साथी के बदन से और अधिक चिपक गई।

“मालूम तो ऐसा ही होता है। और उसे रोक भी कौन सकता है? वह ज़रूर गड़गच्च होगी,” मिशका ने निश्चित स्वर में जवाब दिया।

हवा छतों पर से हिम समेटती सीटी की आवाज़ में बड़े दिन की धुन में गुनगुना रही थी। एक दरवाज़े की अरगल खुलने की खटाक से आवाज़ आई। फिर काँच के दरवाज़े की झनझनाहट सुनाई दी और किसीने गहरी आवाज़ में पुकारा —

“गाड़ीवान!”

“चलो, घर चलें!” कात्का ने कहा।

“तुमने तो नाक में दम कर दिया,” भरे हुए हृदय से मिशका फूट पड़ा—“पता नहीं, घर जाने की तेरे सिर पर ऐसी क्या धुन सवार हुई है?”

“वहाँ इतना ठण्डा नहीं है,” कात्का ने संक्षेप में सफ़ाई देते हुए कहा—“कुछ तो गरमाई मिलेगी।”

“बड़ी गरमाई मिलेगी,—वाह!” मिशका ने उसे कोंचा—“और जब वे जमा होकर तुझे नाच नचाएँगे तब...तब कैसा मालूम होगा? या फिर, जैसा कि पिछली बार हुआ था, अगर उन्होंने तेरे गले में ज़बर्दस्ती वोदका उँडेलकर तुझे छत तक उछालना शुरू

कर दिया तो?—घर? वाह!”

और उसने एक ऐसे आदमी के अन्दाज़ में अपने कन्धों को सिकोड़ा जो जानता है कि वह क्या है। और जिसे अपनी बातों के सही होने में कोई शक व शुबहा नहीं है। कात्का ने बल-सा खाकर बरबस जमुहाई ली और फाटक के एक कोने में ढह गई।

“तुम बस चुप बनी रहो। अगर ठण्ड लगे तो बत्तीसी भींच लो और जी को कड़ा रखो। तब नहीं लगोगी। तुम और मैं, दोनों मिलकर, किसी दिन खूब मौज करेंगे। यह कौन बड़ी बात है। मैं केवल यह चाहता हूँ कि...”

और उसने अपनी बात को अधूरा छोड़ दिया—यह इसलिए कि उसकी साथिन कौतुक में भर उठे। लेकिन वह, कौतुक का ज़रा-सा भी भाव दिखाए बिना, कसमसाकर और भी दोहरी हो गई। मिशका ने, कुछ चिन्तित होकर, उसे चेताया—

“देखो कात्का, सोना नहीं। कहीं पाला न मार जाए। सुन रही हो न?”

“डरो नहीं, मुझे पाला-वाला कुछ भी नहीं मारेगा,” कात्का ने कहा। उसके दाँत ठण्ड से किटकिटा रहे थे।

अगर मिशका न होता तो कात्का निश्चय ही पाले में जाम होकर मर जाती। लेकिन उस छोटे तलछटी लड़के का दृढ़ निश्चय था कि बड़े दिन के अवसर पर वह ऐसी भद्दी बात नहीं होने देगा।

“पसरो नहीं, उठकर बैठो। पसरना तो और भी बुरा है। घुटने टूट नहीं गए। सीधे सतर रहने से आदमी बड़ा दिखता है और उसे ठण्ड नहीं दबोचती। बड़ों के सामने ठण्ड की मार नहीं बसाती। मिसाल के लिए घोड़ों को देखो। वे कभी पाले में जाम नहीं होते। आदमी घोड़ों से छोटे हैं, सो वे हमेशा जाम होते रहते हैं। बात मानो, उठ बैठो। पूरा एक रुबल हो जाए तो समझें कि हाँ, आज का दिन भी कुछ है।”

कात्का, जिसका सारा बदन काँप रहा था, उठ बैठी।

“सच,—भयानक ठण्ड है,” वह फुसफुसाई।

और ठण्ड, वास्तव में, अत्यन्त भयानक हो चली थी। बर्फ़ के बादलों ने क्रमशः गहरे घने बगूलों का रूप धारण कर लिया था,—कहीं वे खम्भों की शक्ल में दिखाई

पड़ रहे थे और कहीं लम्बी चादरों की शक्ल में, जिनमें हिम-कण हीरों की भाँति जड़े थे। जब वे सड़क पर लैम्पों के ऊपर से मँडराते हुए निकलते या दुकानों के चमचमाते शो-केसों के सामने से गुज़रते तो बहुत ही खूबसूरत मालूम होते। वे इन्द्रधनुषी रंगों में जगमगाते और उनकी तेज़ ठण्डी चमक आँखों में खुबने लगती।

लेकिन हमारे छोटे हीरो और छोटी हीरोइन की इस सारे सौन्दर्य में कोई दिलचस्पी नहीं थी।



“ओ-हो!” अपने बिल में से थूथनी बाहर निकालते हुए मिशका ने कहा—“यह तो पूरा रेबड़ चला आ रहा है। उठो कात्का, उन्हें पकड़ें।”

“दया के सागर...” तीर की भाँति सड़क पर पहुँच काँपती आवाज़ में छोटी लड़की मिनमिनाई।

“कुछ देते जाओ, मालिक!” मिशका ने चिरौरी की और फिर एकाएक, चिल्ला उठा—“भागो, कात्का, भागो!”

“भुतने! जरा हाथ तो लगने दो। फिर देखो, तुम्हारी क्यागत बनाता हूँ, शैतान!” शहतीर की भाँति लम्बे पुलिसमैन ने, जो अचानक पटरी पर प्रकट हो गया था, बमककर कहा।

लेकिन वे गायब हो चुके थे। दो चिथड़ा-गेंदें तेज़ी से लुढ़ककर आँखों से ओझल हो गई थीं।



“गायब हो गए, शैतान के बच्चे!” पुलिसमैन भुनभुनाया और सड़क पर नज़र डालते हुए भले स्वभाव से मुसकरा उठा।

और शैतान के बच्चे पत्ता तोड़ भाग रहे थे और हँस रहे थे। कात्का का पाँव बार-बार उसके चिथड़ों में उलझ जाता था और वह गिर पड़ती थी।

“हाय राम, फिर गिर पड़ी!” अपने पाँवों पर फिर खड़ी होने के लिए जूझते हुए वह कहती, पीछे की ओर मुड़कर भय से देखती, और

उसके चेहरे पर बरबस हँसी खेलने लगती—“कहाँ गया वह मरदूद?”

मिशका—हँसी से दोहरा हुआ—राह-चलतों से टकराता और इस अपराध के बदले, काफी बार, उसे करारी झिड़कियाँ खानी पड़तीं।

“बस, बस, बहुत लुढ़कियाँ खा चुकी,—तुझे शैतान उठा ले जाए... ज़रा शक्ल तो देखो,—क्या बन गई है? बुद्धू कहीं की! अरे, फिर गिर पड़ी! बाप रे, तुम तो मुझे हँसाते-हँसाते मार डालोगी!”

कात्का की लुढ़कियों ने उसमें भारी उछाह का संचार कर दिया था।

“वह अब हमें कभी नहीं पकड़ सकता। ज़्यादा भागने की ज़रूरत नहीं। वह इतना बुरा नहीं। वह दूसरे वाला, जिसने सीटी बजाई थी। एक बार मैं भाग रहा था कि एकदम अचानक—खटाक! सीधे रात के सन्तरी के पेट में जा धँसा और मेरा सिर जोरों से उसके डण्डे से टकरा गया!”

“मुझे याद है। इतना बड़ा गुमटा पड़ गया था,” कात्का ने कहा और एक बार फिर हँसते-हँसते दोहरी हो गई।

“बस करो अब। बहुत हँस ली,” मिशका ने भारी मुँह बनाकर उसे रोका—“और मैं जो कहता हूँ, वह सुनो।”

दोनों, गम्भीर और चिन्तित मुद्रा बनाए, साथ-साथ चलने लगे।

“मैं वहाँ तुमसे झूठ बोला। दस नहीं, उस खूसट ने मेरे हाथ से बीस कोपेक ठोंसे थे। और उससे पहले भी मैं तुमसे झूठ बोला—इस डर से कि कहीं तुम फिर घर चलने की रट न लगाने लगे। आज का दिन बहुत अच्छा रहा। जानती हो, कितना मिला? एक रूबल और पाँच कोपेक। है न बहुत!”

“और नहीं तो क्या?” कात्का ने साँस छोड़ी—“चाहो तो इससे जूते खरीद सकते हो—कबाड़ी बाज़ार में।”

“जूते,—ऊँह! वे तो मैं यों ही उड़ाकर तुम्हें दे सकता हूँ। ज़रा ठहर जाओ। कितने ही दिनों से जूतों की एक जोड़ी पर मेरी नज़र है। मौका लगने की देर है, साफ़ उड़ा लाऊँगा। लेकिन बात सुनो—चलो, अब ज़रा कहवाख़ाने में चलें। क्यों, ठीक है न?”

“चची को फिर पता चल जायेगा और वह हमारी मरम्मत करेगी,—जैसा कि तब हुआ था,” कात्का ने आशंका से कहा, लेकिन कहवाख़ाने में जाकर गरमाने का मोह इतना प्रबल था कि उसे छिपाना मुश्किल था।

“हमारी मरम्मत करेगी? नहीं, इसकी नौबत नहीं आएगी। हम और तुम, दोनों, एक ऐसे कहवाख़ाने में चलेंगे जहाँ एक भी पंछी यह न पहचान सके कि हम कौन हैं।”

“क्या सचमुच?” कात्का ने उछाह में भरकर कहा।

“अच्छा तो सुनो, हम क्या करेंगे। सबसे पहली और सबसे बड़ी बात तो यह है कि हम आधा पौण्ड सासेज लेंगे—आठ कोपेक के, फिर आधा पौण्ड सफ़ेद रोटी—पाँच कोपेक की। तेरह कोपेक तो ये हुए। इसके बाद तीन-तीन कोपेक की दो मीठी रोटियाँ लेंगे,— छः कोपेक ये हुए। इस तरह उन्नीस कोपेक हो गए। फिर एक केतली चाय—छः कोपेक की। पूरे पच्चीस कोपेक,—ज़रा सोचो तो! और हमारे पास बाकी

बच रहेंगे...”

मिशका अचकचाकर चुप हो गया। कात्का ने उसे भारी और शंका की नज़र से देखा।

“इतना खर्च कर डालोगे,” उसने दबी आवाज़ में पूछा।

“बोलो नहीं, चुपचाप सुनो। यह ज़्यादा नहीं है। इसके अलावा आठ कोपेक की चीज़ें हम और खायेंगे। कुल तैंतीस कोपेक और जब यह सब करना ही है तो फिर कहना-सुनना क्या? बड़े दिन का त्योहार है,—क्यों, है न? सो हमारे पास बाकी बचेगा...अगर पच्चीस खर्च किए तो अस्सी कोपेक...और अगर तैंतीस खर्च किए तो सतहत्तर कोपेक—सात दस दस के और कुछ फुटकर बचेगा। देखो, कितना अधिक बच रहेगा? उस बूढ़ी खूसट को और क्या चाहिए? इतना काफी है उस शैतान की खाला के लिए। चलो, चलें। जल्दी करो।”

हाथ में हाथ डाले, उछलते और रपटते, वे पटरी पर बढ़ चले। हिम-कण उड़ते हुए उनकी आँखों से टकराते और उन्हें कुछ दिखाई नहीं देता। जब-तब बर्फ़ का बादल ऊपर से उनपर झपटता और उन दोनों के छोटे आकारों को पारदर्शक चादर में लपेट लेता जिसे वे, भोजन और गरमाई की आशा में उमगे, तुरत तार-तार कर डालते।

“सुनो,” कात्का ने—इतनी तेज़ी से चलने के कारण जिसकी साँस फूल आयी थी—हाँफते हुए कहा—“तुम बुरा मानो चाहे भला,—अगर उसे मालूम हो गया तो मैं साफ़ कह दूँगी—यह सब तुम्हारी करतूत है...मैं पर्वह नहीं करती—तुम हर बार भाग जाते हो, और अकेले मैं भुगतती हूँ—वह मुझे सदा पकड़ लेती है और तुमसे कहीं ज़्यादा मारती है... समझ गए न? मैं सब कह दूँगी।”

“जाओ, जो जी में आए कह देना,” मिशका ने गरदन हिलाई—अगर वह मारेगी तो देखा जाएगा!—मैं सब भुगत लूँगा। जाओ... और तुम भी अपने मन की कर लो।”

मुँह से सीटी बजाता, अपना सिर पीछे की ओर फेंके, वीर-भावना में पगा वह चल रहा था। उसका चेहरा पतला था। उसकी आँखों में शैतानी भरी थी और उनमें, आम तौर से, ऐसा भाव झलकता था जो उसकी इस छोटी आयु से ज़रा भी मेल नहीं

खाता था। उसकी नाक नुकीली और कुछ मुड़ी हुई थी।

“यह लो, कहवाखाना आ गया। एक नहीं, दो। बोलो किसमें चला जाए?”

“छोटे वाले में। लेकिन आओ, पहले किराने की दुकान पर चलें।”

खाने की सारी चीज़ें खरीदने के बाद उन्होंने छोटे कहवाखाने में प्रवेश किया।

कहवाखाना धुएँ, भाप और एक तेज़ खट्टी गन्ध से भरा था। आवारा भिखमँगे, गाड़ीवान और सैनिक अँधेरे में लिपटे बैठे थे और अत्यन्त गन्दे वेटर मेज़ों के बीच मँडरा रहे थे।

चीख-चिल्लाहट गाने और गालियों का बाज़ार गर्म था।

कोने में एक ख़ाली मेज़ पड़ी थी। मिशका ने उसे भाँपा और सपक सुई की भाँति वहाँ पहुँच गया। उसने अपना कोट उतारकर रख दिया और इसके बाद काउण्टर के पास पहुँचा। कात्का भी, लजीली नज़रों से इधर-उधर देखते हुए, अपना कोट उतारने लगी।

“क्यों, मिस्टर, चाय मिलेगी?” काउण्टर को अपनी मुट्ठियों से धीरे-धीरे बजाते हुए मिशका ने वहाँ बैठे आदमी से पूछा।

“चाय? मिलेगी क्यों नहीं? थोड़ा कष्ट करो। उधर जाकर कुछ गर्म पानी ले लो।



और देखो, कोई चीज़ टूटे-फूटे नहीं। अगर तोड़-फोड़ की तो ऐसा सबक पढ़ाऊंगा कि याद रखोगे।”

लेकिन मिशका पानी के लिए लपक चुका था।

दो मिनट बाद वह अपनी साथिन के साथ बैठा काग़ज में तम्बाकू लपेटकर भरे-पूरे अन्दाज़ में अपने लिए एक ताज़ा सिगरेट बना रहा था—उस गाड़ीवान की भांति, जो दिन में अच्छी मज़दूरी कर चुका हो। कात्का मुग्ध भाव से उसे देख रही थी। उसके हृदय में इस बात का रोब छाया था कि लोगों के बीच वह कितने बढ़िया और सहज ढंग से व्यवहार करता है। कहवाख़ाने के इस कान-फोड़ होहल्ले के बीच वह सात जनम भी अपने आपको सम्भाले नहीं रख सकती और भी कुछ नहीं तो एक यही डर उसके सिर पर सवार रहता कि कोई क्षण जा रहा है जब उन्हें कान पकड़कर यहाँ से बाहर निकाल दिया जाएगा। लेकिन, चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाए, मिशका के सामने वह अपने इन भावों और आशंकाओं को प्रकट नहीं होने दे सकती। सो वह अपने सन के रंग के बालों को थपथपाने और सीधे-सादे तथा अकृत्रिम अन्दाज़ में अपने इधर-उधर देखने लगी। ऐसा करने के प्रयास में उसके मैले गालों में रंग की बाढ़ उतर आई और अपनी अचकचाहट छिपाने के लिए अपनी नीली आँखों को उसने सिकोड़ लिया। इस बीच मिशका, अहाते के चौकीदार सिगनेई के लहजे और शब्दों में, उसे पाठ पढ़ा रहा था। यह चौकीदार—उस समय भी जब कि वह नशे में धुत्त होता था—मिशका को बहुत ही प्रभावशाली आदमी मालूम होता था और अभी-अभी चोरी के अपराध में तीन महीने की जेल काटकर आया था। सो उसके लहजे और शब्दों की बात करता मिशका कात्का से कह रहा था—

“हाँ तो मिसाल के लिए, समझ लो कि तुम भीख माँगने निकली हो। अब भीख कैसे माँगी जाती है? केवल यह चिचियाते रहना कि दया करो, दया करो, बिल्कुल बेकार है। यह कोई तरीका नहीं है। तुम्हें जो करना चाहिए वह यह कि उस मरदूद के पाँवों से उलझ जाओ—इस तरह कि वह घबरा जाए और डरने लगे कि कहीं वह लड़खड़ाकर तुम्हारे ऊपर न गिर पड़े।”

“यह तो मैं कर लूँगी,” कात्का ने दबे स्वर में सहमति प्रकट की।



“बहुत ठीक,” उसके साथी ने सराहना से सिर हिलाते हुए कहा—“यही असली चीज़ है। अब, मिसाल के लिए, चची अनफ़ि़सा को लो। चची अनफ़ि़सा क्या है? सबसे पहली बात यह कि वह पियक्कड़ है। और इसके अलावा...”

और मिशका ने, सराहनीय साहस के साथ, खुलकर बताया चची अनफ़ि़सा इसके अलावा और क्या है।

कात्का ने सिर हिलाकर चची के बारे में उसके मूल्यांकन से सहमति प्रकट की।

“तुम उसका कहना नहीं मानती। यह ठीक नहीं है। तुम्हे मिसाल के तौर पर, कहना चाहिए—‘मैं अच्छी लड़की बनूँगी, चची तुम्हारी बात का मैं ध्यान रखूँगी...’ दूसरे शब्दों में यह कि उसको मुलायम मक्खन लगाती रहो और इसके बाद जो मन में आए करो यह सही तरीका है।”

मिशका चुप हो गया और रोबीले अन्दाज़ में अपना पेट खुजलाने लगा, जैसे कि अपना भाषण झाड़ने के बाद सिगनेई करता था। और जब उसे और कोई विषय नहीं सूझा तो उसने अपने सिर को हल्का-सा झटका दिया और बोला—

“हाँ तो अब खाना चाहिए।”

“आओ, शुरू करें,” कात्का ने, जो कितनी ही देर से रोटी और सासेज की ओर भूखी आँखों से देख रही थी, सिर हिलाकर सहमति प्रकट की।

और सीलन की गन्ध भरे रोशनीविहीन इस कहवाखाने के एक अँधेरे कोने में वे अपना साँझ का खाना खाने लगे। गन्दे गीतों और भद्दी गालियों की आवाज़ पृष्ठ-संगीत का काम कर रही थी। दोनों बड़ी लगन से, अपनी पसन्द और नापसन्द का परिचय देते और बीच-बीच में कुछ रुकते हुए, सच्चे रसज्ञों की भाँति खा रहे थे। और अगर कात्का, शालीनता की भावना को भूलकर, लालच के मारे अपने मुँह में इतना बड़ा निवाला भर लेती कि उसके गाल कुप्पे से निकल आते और उसके दीदे बाहर झाँकने लगते, तो शान्त और स्थिर मिशका दुलार के स्वर में कहता—

“ऐसी जल्दी क्या है, रानी साहिबा?”

और फिर, उस भारी-भरकम निवाले को निगलने की उतावली में, उसका दम-सा घुटने लगता।

और यही मेरी कहानी का अन्त है। बिना किसी क्षोभ या पछतावे के मैं इन बच्चों को बड़े दिन की यह रात बिताने के लिए अकेला छोड़ सकता हूँ। और यह आप निश्चित समझिए कि उनके जाम होकर मरने का खतरा ज़रा भी नहीं है। वे अपने पूरे रंग में हैं। आखिर उन्हें बर्फ़-पाले में जाम करके मारने से मेरा—या इस दुनिया का—क्या भला होगा?

मुझे यह एक बहुत ही बड़ी और भारी मूर्खता मालूम होती है कि बच्चों को पाले में जाम करके मारा जाए—खास तौर से उस हालत में, जब कि वे निश्चय ही किसी न किसी दिन मरेंगे, लेकिन इससे कहीं अधिक सीधे और साधारण तरीके से।

(1894)





अनुराग ट्रस्ट

लखनऊ